जैन आगम साहित्य

साध्वी कनकश्री

जैन साहित्य आगम और आगमेतर— इन दो भागोंमें विभक्त है। जैन वाङ्मय का प्राचीन भाग आगम कहलाता है।

आगम साहित्य चार विभागोंमें विभक्त है— १. अंग २. उपांग ३. छेद और ४. मूल। आगम-साहित्यका यह वर्गीकरण प्राचीन नहीं है। इसका प्राचीन वर्गीकरण अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्यके रूपमें उपलब्ध होता है।

अंग-प्रविष्ट साहित्य महावीरके प्रमुख-शिष्य गणधरों द्वारा रचित होनेके कारण सर्वाधिक मौलिक और प्रामाणिक माना जाता है

अर्हंत अपने अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शनके आलोकमें विश्व-दर्शन कर सत्य को उद्भासित करते हैं और गणधर शासन-हितके लिए उसे सूत्र रूपमें गूँथते हैं। वह विशाल ग्रन्थ-राशि सूत्र या आगमके नामसे पुकारी जाती है।[1]

अमितज्ञानी केवली तप, नियम और ज्ञानके वृक्ष पर आरूढ़ होकर भव्य जनोंको प्रबोध देने हेतु ज्ञान की वर्षा करते हैं और गणधर अपने बुद्धिमय पटमें उस सम्पूर्ण ज्ञान-वर्षाको ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार वे तीर्थ-हितकी दृष्टिसे तीर्थंकरकी वाणीको सूत्ररूपमें गूँथते हैं।[2] यही गणधर सन्दृब्ध साहित्य-राशि अंग प्रविष्ट कहलाती है। स्थविरोंने जिस साहित्यकी रचना की वह अनंग-प्रविष्ट है। द्वादशांगी अंग-प्रविष्ट है। उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण साहित्य अनंग-प्रविष्ट है। ऐसा भी माना जाता है कि गणधरोंके प्रश्न पर भगवान्ने त्रिपदी-उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का उपदेश दिया। उसके आधार पर जो साहित्य रचा गया, वह अंग-प्रविष्ट कहलाया और भगवान्के मुक्त व्याकरणके आधार पर जो साहित्य रचा गया, वह अनंग-प्रविष्ट कहलाया।[3]

दिगम्बर साहित्यमें आगमोंके ये दो ही विभाग उपलब्ध होते हैं—अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य।[4] अनंग प्रविष्टके नामोंमें अवश्य अन्तर है।

---

१. आ. नि. ९२— अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स दियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तई॥

२. आ० नि० ८९-९० — तव नियमणाणरुक्खं आरूढो केवली अमियनाणी।
तो मुयइ नाणवुट्ठिं भवियजण विवोहणट्ठाए॥
तं बुद्धिमएण पडेण गणहरा गिण्हिउं निरवसेस।
तित्थयर भासियाइं गथन्ति तओपवयणट्ठा॥

३. विशेषावश्यक भाष्य, ५५०—गणहर थेरककंवा आएसा मुक्क वागरणतो वा।
धुव चल विसेसतो वा अंगाणंगेसु नाणत्तं॥

४. तत्त्वार्थसूत्र, १-२० (श्रुतसागरीय वृत्ति)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वेताम्बर परम्परामें भी प्राचीन विभाग यही रहा है। स्थानांग, नन्दी आदिमें यही उल्लेख है। आगम विच्छेद कालमें पूर्वों और अंगोंके जो निर्यूहण या शेषांश बाकी रहे उन्हें पृथक् संज्ञाएँ मिली।

अंग-प्रविष्ट

अंग प्रविष्ट का स्वरूप सदा सब तीर्थंकरोंके समयमें नियत होता है। इसे द्वादशांगी या गणिपिटक भी कहते हैं। जैसा कि द्वादशांगी नामसे ही स्पष्ट है। अंग-साहित्य बारह विभागों या ग्रन्थोंमें विभक्त है, जो इस प्रकार है—

१. आचारांग	२. सूत्रकृतांग
३. स्थानांग	४. समवायांग
५. भगवती	६. ज्ञाताधर्मकथा
७. उपासकदशा	८. अन्तकृद्दशा
९. अनुत्तरोपपातिकदशा	१०. प्रश्न-व्याकरण
११. विपाकश्रुत	१२. दृष्टिवाद

दृष्टिवाद वर्तमानमें अनुपलब्ध है।

अनंग-प्रविष्ट

अनंग-प्रविष्ट साहित्य तीन भागों विभक्त है—उपांग,मूल, और छेद-सूत्र। अनंग-प्रविष्ट साहित्य नियत नहीं होता।

उपांग

उपांग साहित्य का पल्लवन स्थविर-आचार्योंने अंग-साहित्यके आधार पर ही किया था, ऐसा उसके नाम और संख्या-साम्यसे प्रतीत होता है।

उपांग बारह हैं—

१. औपपातिक	२. राजप्रश्नीय
३. जीवाभिगम	४. प्रज्ञापना
५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	६. सूर्यप्रज्ञप्ति
७. चन्द्रप्रज्ञप्ति	८. निरयावलिका
९. कल्पवतँसिका	१०. पुष्पिका
११. पुष्पचूलिका	१२. वृष्णि-दशा

अंग-प्रविष्टके बारहवे अंग—दृष्टिवादके लुप्त हो जाने पर भी उसका उपांग "वृष्णिदशा कैसे सुरक्षित रह गया, यह भी शोध-विद्वानोंके लिए विचारणीय प्रश्न है।

मूल चार हैं

दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, अनुयोगद्वार और नन्दी।

छेद सूत्र चार हैं

निशीथ, व्यवहार, बृहत्कल्प और दशाश्रुतस्कन्ध।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्तृत्व

जैन-परम्परामें अर्हत् प्रोक्त, गणधर-सूत्रित, प्रत्येक बुद्ध सूत्रित, और स्थावर रचित वांगमयको प्रमाणभूत माना है।[1] अतः आगम-वाङ्गमयकी कर्तृताका श्रेय उन्हीं महनीय व्यक्तित्वों को उपलब्ध होता है।

अङ्ग-साहित्यके अर्थके उद्गाता स्वयं तीर्थंकर हैं और उसके सूत्रयिता हैं प्रज्ञापुरूष गणधर।

शेष साहित्य प्रवाहित हुआ है चतुर्दशपूर्वी, दशपूर्वी और प्रत्येक बुद्ध आचार्यों और मुनियोंके मनीषा हिमालयसे।[2] आचार्य वट्टकेरने भी गणधर कथित, प्रत्येकबुद्ध कथित, श्रुतकेवली कथित और अभिन्नदशपूर्वी कथित सूत्रों को प्रमाण माना है।[3]

इस दृष्टिसे हम इस तथ्य तक पहुँचते हैं कि वर्तमान अंग प्रविष्ट साहित्य के उद्गाता हैं, स्वयं भगवान् महावीर और रचयिता हैं उनके अनन्तर शिष्य आचार्य सुधर्मा।

अनंग-प्रविष्ट साहित्य कर्तृत्वकी दृष्टिसे दो भागोंमें बँट जाता है—कुछेक आगम स्थविरों द्वारा रचित है और कुछ द्वादशांगोंसे निर्यूढ़—उद्धृत हैं।

रचनाकाल

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, अंग-साहित्यकी रचना गणधर करते हैं और उपलब्ध अंग गणधर सुधर्माकी वाचनाके हैं। सुधर्मा स्वामी भगवान् महावीरके अनन्तर शिष्य होनेके कारण उनके समकालीन थे। इसलिए वर्तमान अङ्ग साहित्यका रचनाकाल ई० पू० छठी शताब्दी सिद्ध होता है।

अंग-बाह्य साहित्य भी एक कर्तृक नहीं है, इसलिए उनकी एक सामयिकताकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर भी आगमोंके काल—निर्णयकी दृष्टिसे हमारे पास एक ठोस आधार है। वह यह है कि श्वेताम्बर परम्परामें सर्वमान्य बत्तीस सूत्रोंका व्यवस्थित संकलन आचार्य देवर्द्धिगणीके सान्निध्यमें सम्पन्न हुआ था। उनका समय है ईसाकी चौथी शताब्दी। अतः आगम-संकलनकी दृष्टिसे आगमोंका रचनाकाल यही उपयुक्त ठहरता है। वैसे ईस्वी पूर्व छठी शताब्दीसे ईस्वी चौथी शताब्दी तकका समय आगम रचनाकाल माना का सकता है। दिगम्बर परम्पराके अनुसार वीर निर्वाणके ६८३ वर्षके पश्चात् आगमोंका मौलिक-स्वरूप नष्ट हो गया। अतः उसे वर्तमानमें उपलब्ध आगम साहित्यकी प्रामाणिकता मान्य नहीं हैं।

दिगम्बर आम्नायमें आगम लोपके पश्चात् जो साहित्य रचा गया उसमें सर्वोपरि महत्त्व षट् खण्डागम और कषायप्राभृतका है।

जब पूर्वों और अंगोंके बचे-खुचे अंशोंकी भी लुप्त होनेकी सम्भावना स्पष्ट दिखाई देने लगी तब आचार्य धरसेन (विक्रम दूसरी शताब्दी) ने अपने दो प्राज्ञ शिष्यों—भूतबली और पुष्पदन्तको श्रुताभ्यास कराया। इन दोनोंने षट्खण्डागमकी रचनाकी। लगभग इसी समयमें आचार्य गुणधरने कषाय-प्राभृतकी रचनाकी। ये पूर्वोके शेषांश हैं, इसलिए इन्हें पूर्वोंसे उद्धृत माना जाता है। ये ही दिगम्बर परम्पराके आधारभूत ग्रन्थ हैं।

---

१. अर्हत्प्रोक्तं गणधरदृब्धं प्रत्येकबुद्धदृब्धं च।
स्थविरग्रथितंच तथा, प्रमाणभूतं त्रिधा सूत्रम्॥

२. द्रोणसूरि, ओ. नि. पृ. ३

३. मूलाचार, ५.८०—सुत्तं गणधरकथिदं, तहेव पत्तेय बुद्धकथिदं च।
सुदकेवलिणा कथिदं अभिण्णदशपुव्विकथिदं च॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार तीव्र गतिसे ह्रासकी ओर बहती श्रुतस्रोतस्विनीको समय-समय पर होनेवाली आगम-वाचनाओंके माध्यमसे बचा लिया गया। फलतः नाना परिवर्तनोंके बावजूद भी वर्तमानमें उपलब्ध श्रुतांशकी मौलिकता असंदिग्ध है। इसी विश्वासके आधार पर श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा ४५ आगम-सूत्रोंको प्रमाणभूत मानती है तथा स्थानकवासी और तेरापंथी परम्पराएँ ३२ सूत्रों को। प्रकीर्णकोंके अतिरिक्त ३२ सूत्रोंकी प्रामाणिकतामें तीनों ही परम्पराएँ एक मत हैं। प्रस्तुत निबन्धके माध्यमसे हमें श्वेताम्बर-परम्परा सम्मत इन्हीं ३२ आगम ग्रन्थोंको आधार मानकर कुछ चर्चा करनी है।

मैं एक-एक आगम-ग्रन्थका औपचारिक परिचय देनेका प्रयत्न न कर सीधे तथ्योंके प्रांगणमें उतर जाना चाहती हूँ। ताकि हम आगम-साहित्यकी प्रदेय-भूमिकाओं पर समग्रतासे विचार कर सकें।

आगमोंकी भाषा

दूसरोंके साथ सम्पर्क स्थापित करनेका सशक्त माध्यम है भाषा। भाषाका प्रयोजन है, अपने भीतरके जगत्को दूसरोंके भीतरी जगत्में उतार देना। इस दृष्टिसे भाषा एक उपयोगिता है। किन्तु उस समय भाषा मात्र उपयोगिता न रहकर अलङ्करण और बड़प्पनका मानदण्ड बन गई। विद्वान् लोग उस संस्कृत भाषामें बोलने लगे, जो जनसाधारणके लिए अगम भाषा थी।

महावीरका लक्ष्य था—सबको जगाना। सबको जगानेके लिए सबके साथ सम्पर्क साधना आवश्यक होता है। मात्र आभिजात्य भाषा या पण्डितोंकी भाषा जन-सामान्यके साथ सम्पर्क स्थापित करनेमें सहयोगी नहीं बन सकती। अतः महावीरने जन भाषाको ही जन-सम्पर्कका माध्यम बनाया। वह थी उस समयकी लोक भाषा-प्राकृत। वह भाषा मगधके आधे भागमें बोली जाती थी, अतः वह अर्द्धमागधी भी कहलाती थी[1]। अर्धमागधी उस समयकी प्रतिष्ठित भाषा थी। वह आर्य-भाषा मानी जाती थी। उस भाषाका प्रयोग करनेवाले भाषा-आर्य कहलाते थे।[2]

प्राकृतका अर्थ है—प्रकृति-जनताकी भाषा। भगवान् महावीर जनताके लिए, जनताकी भाषामें बोले थे, अतः वे जनताके बन गए।

प्राकृत भाषामें निबद्ध होते हुए भी जैन आगम साहित्यको भाषाकी दृष्टिसे दो युगोंमें बाँट सकते हैं। ई० पू० ४०० से ई० १०० तकका पहला युग है। इसमें रचित अङ्गोंकी भाषा अर्ध-मागधी है। दूसरा युग ई० १०० से ई० ५०० तकका है। इसमें रचित या निर्यूढ़ आगमोंकी भाषा जैन-महाराष्ट्री प्राकृत है।

वैसे समकालीन ग्रन्थोंकी प्राकृत भाषामें भी परस्पर पर्याप्त भिन्नता है। जैसे सूत्रकृतांगकी भाषा दूसरे ग्रन्थोंकी भाषासे भिन्न ही पड़ जाती है। उसमें ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो व्याकरणके नियमोंसे सिद्ध नहीं होते। इससे सूत्रकृतांगकी प्राचीनता सिद्ध होती है। आचारांग प्रथम और द्वितीयकी भाषाका प्रवाह तो एकदम बदल गया है।

शैली

आगम ग्रन्थोंमें गद्य, पद्य और चम्पू—इन तीनों ही शैलियोंका प्रयोग हुआ है। आचारांग (प्रथम) चम्पू-शैलीका उत्कृष्ट उदाहरण है। फिर भी किसी ग्रन्थमें आदिसे लेकर अन्त तक एक ही शैलीका निर्वाह

---

१. समवाओ, ३४.१

भगवं चणं अद्धमागदीए भासाए धम्म माइक्खइ।

२. पन्नवणा १।६२

भासारिया जे णं अद्धमागहाए भासाए भासंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ हो ऐसा नहीं लगता। यहाँ तक कि एक ही ग्रन्थकी शैलीमें विभिन्न स्थलों पर पर्याप्त अन्तर आ गया है। ज्ञाताधर्मकथाके प्रथम अध्ययनको पढ़नेसे लगता है, हम 'कादम्बरी' की गहराईमें गोता लगा रहे हैं।

आठवें नौवें और सोलहवें अध्ययनमें आजकी उपन्यास शैलीके बीज प्रस्फुटित होते प्रतीत होते हैं। अन्यत्र एकदम साधारण शैली भी अपनायी गयी है।

गद्य भागके बीच या अन्तमें गद्योक्त अर्थको पद्य-संग्रहमें गूंथा गया है। ऐसी शैली उपनिषदोंकी रही है। जैसे प्रश्नोपनिषद्में लिखा है—स एषोऽकलोऽमृतो भवति, तदेष श्लोकः

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिता। तं वेद्यं पुरुषं वेद (यथा) मा वो मृत्युः परिव्यथाः॥ (प्रश्नो० ६।५।६) तुलना करें—

चउत्थं पयं भवइ, भवइ य इत्थ सिलोगो—पेदेइ हियाणुसासणं सुस्सूसइ तं च पुणो अहिट्ठए।
नयमाणं—भएणं मज्जइ, विणयसमाही आययट्ठीए॥[1]

अनुष्टुभ् या अन्य वृत्तों वाले अध्ययनोंके अन्तमें भिन्न छन्द वाले श्लोकोंका प्रयोग कर आगम-साहित्यमें महाकाव्य शैलीका भी संस्पर्श हुआ है।

आगम ग्रन्थोंमें छन्दकी दृष्टिसे "चरण" में अक्षरोंकी न्यूनाधिकता भी उपलब्ध होती है। वैदिक युगमें भी ऐसा होता था। वहाँ जिस चरणमें एक अक्षर कम अधिक हो उसे क्रमशः निचित और भूरिक कहा जाता है[2] तथा जिस चरणमें दो अक्षर कम या अधिक हो उसे क्रमशः विराज और स्वराज्य कहा जाता है।[3]

विषय-वस्तु और व्याख्या

आचार्य आर्यरक्षितने व्याख्याकी सुविधाके लिये आगम-ग्रन्थोंको चार अनुयोगोंमें विभक्त कर दिया। जैसे—द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग, गणितानुयोग और धर्मकथानुयोग[4]। इस वर्गीकरणके पश्चात् अमुक-अमुक आगमोंकी व्याख्या अमुक-अमुक दृष्टिकी प्रधानतासे की जाने लगी। वैसे सम्पूर्ण आगम-वाङ्मय विशुद्ध अध्यात्म-धाराका प्रतिनिधित्व और प्रतिपादन करता है फिर भी उसमें अनेकानेक विषयोंकी पूर्ण स्पष्टता और उन्मुक्तताके साथ प्रस्तुति हुई है। आयुर्वेद, ज्योतिष, भूगोल, खगोल, शिल्प, संगीत, स्वप्न-विद्या, वाद्य-यन्त्र, युद्ध-सामग्री आदि समग्र विषयोंकी पर्याप्त जानकारी हमें आगमोंसे प्राप्त हो सकती है।

एक ही स्थानांगमें कम-से-कम १२०० विषयोंका वर्गीकरण हुआ है। भगवतीसूत्र तो मानों प्राच्य-विद्याओंका आकर ग्रन्थ है। विषय वैविध्यकी दृष्टिसे विद्वानोंने स्थानांग और भगवतीको विश्वकोष जैसा महत्त्व दिया है।

आगमोंमें ऐसे सार्वभौम सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है, जो आधुनिक विज्ञान-जगत्में मूलभूत सिद्धान्तोंके रूपमें स्वीकृत है। जहाँ तक मैंने पढ़ा और जाना है, स्थानांग या भगवती जैसे एक ही अंगका

---

१. दशवैकालिक ९।४।२१

२. ऋक् प्रातिशाख्य, पाताल १; "एतन्न्यूनाधिका सैव निचृदूनाधिका भूरिक।"

३. शौनक ऋक् प्रातिशाख्य, पाताल १७।२—

विराजस्तूत्तरस्याहुर्द्वाभ्यां या विषये स्थिताः।
स्वराज्यं एवं पूर्वस्य याः काश्चैनं गता ऋच्॥

४. आवश्यककथा, श्लोक १७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांगोपांग परिशीलन कर लेनेसे हजारों विविध प्रतिपाद्योंके भेद-प्रभेदोंका गम्भीर ज्ञान तथा साथ ही भारतीय ज्ञान-गरिमा और सौष्ठवका अन्तरंग परिचय प्राप्त हो सकता है।

क्या आगम साहित्य नीरस है ?

जर्मन विद्वान् डॉ. विन्टरनित्जने लिखा है—"कुछ अपवादोंके सिवाय जैनोंके पवित्र-ग्रन्थ धूलकी तरह नीरस, सामान्य और उपदेशात्मक हैं। सामान्य मनुष्योंकी हम उनमें आज तक भी बहुत कम रुचि पाते हैं। इसलिये वे विशेषज्ञोंके लिये ही महत्त्वपूर्ण हैं। वे सामान्य पाठकोंकी रुचिका दावा नहीं कर सकते।[1]

डॉ. विन्टरनित्जके इस कथनमें आंशिक सचाई हो सकती है, पर उनके इन विचारोंसे मैं सर्वथा सहमत नहीं हूं। क्योंकि वे विशेषज्ञोंके लिये ही महत्त्वपूर्ण हैं—इन विचारोंका निरसन स्वयं डॉ. विन्टरनित्जकी अग्रिम पंक्तियोंसे हो जाता है। आगे उन्होंने लिखा है—जैनोंने हमेशा यह ध्यान रखा है कि उनका साहित्य जनता तक पहुंचे, इसीलिये उन्होंने सैद्धान्तिक ग्रन्थ व प्राचीन साहित्य प्राकृत-भाषामें लिखा।[2] अतः वे मात्र विशेषज्ञोंके लिये ही उपयोगी हों, ऐसा नहीं लगता। हाँ प्राकृत भाषाके अध्ययन-अध्यापनकी परम्परा छूट जाने या उसकी लोक-भाषाके रूपमें प्रतिष्ठा न रहनेके कारण सामान्य जनताके लिये वे सुगम या सुज्ञेय नहीं रह सके। लेकिन हर युगके मनीषी आचार्यों और विद्वानोंने विशाल आगम-ग्रन्थोंके प्रतिपाद्यको युग भाषामें प्रस्तुत करनेका सदा प्रयत्न किया है। युगप्रधान आचार्य श्री तुलसीके वाचना प्रमुखत्वमें चल रहे आगम-सम्पादनका उपक्रम उसी शृङ्खलाकी एक सुदृढ़ कड़ी है।

दूसरी बात है नीरसताकी, लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि विषयोंकी विविधताके कारण इन्हें पढ़नेमें रुचि और ज्ञान-दोनों परिपुष्ट होते हैं।

जैन आगम-साहित्य उपमाओं और दृष्टान्तोंसे भरा पड़ा है। देश, काल, क्षेत्र, सभ्यता और संस्कृतिके अनुरूप अनेक उपमाएँ व दृष्टान्त प्रचलित होते हैं। इनके प्रयोगसे प्रतिपाद्यमें प्राण भर जाते हैं। वह सहज ही हृदयंगम हो जाता है। आगम-साहित्यमें गम्भीर अर्थ भी सुबोध और सरस शैलीमें प्रकट हुआ है। इसमें उपमाओं और दृष्टान्तोंका अनन्य योग रहा है। उत्तराध्ययन एक पवित्र धर्मग्रन्थ है। पर उसमें प्रयुक्त उपमाओंकी बहुलताके कारण ऐसा लगता है, यह कोई काव्य-ग्रन्थ है। सम्भव है इसी लिये स्वयं विद्वान् विन्टरनित्जने इसे श्रमण-काव्य कहा है।

वे आगे लिखते हैं—जैन-आगमोंमें उदाहरणों और उपमाओंके माध्यमसे सिद्धान्तोंकी बात कहनेका अद्वितीय तरीका दृष्टिगत होता है। उनके इस कथनमें पर्याप्त यथार्थताके दर्शन होते हैं। क्योंकि अनेक स्थलों पर ऐसी व्यावहारिक उपमाओंका प्रयोग हुआ है, जिनके माध्यमसे वर्ण्य विषयमें सजीवता आ गई है। जैसे—"णाइणं सरइ बाले, इत्थी वा बुद्धगामिणी।"[3]

समुद्रमें तीव्र गतिसे दौड़ती हुई जहाजको जिसके विशाल पाल बन्धे हैं, कैसी सजीव और विरल उपमासे उपमित किया गया है—

---

1. A History of Indian Literature P. 466
2. " " " P. 443
३. सूयगड़ो—३१।१।१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वितत पक्खा इव गरुड़ जुवई ।.[1]

—जैसे कोई गरुड़-युवती पंख फैलाए भागी जा रही हो ।

दोनों कानोंमें झूलते चमकीले कुण्डल युगलके मध्य स्थित दिव्य आकृतिको वर्णित करते हुए लिखा है—मानो पूनमकी रातमें शनि और मङ्गल नक्षत्रोंके बीच नयनानन्द शारदीय चन्द्र उग आया हो ।[2]

समुद्री तूफानसे प्रताड़ित उछलती-गिरती और डूबती-तैरती नौकाका उत्प्रेक्षाओंके माध्यमसे कितना सजीव चित्र खींचा गया है "ज्ञाता"के नौवें अध्ययनमें—

"भयंकर समुद्री तूफानके कारण नौका ऊपर उछलती है और एक झटकेके साथ पुनः नीचे गिरती है; जैसे करतलसे आहत गेंद बार-बार पत्थरके आंगनमें उछलती-गिरती है । ऊपर उछलती हुई वह ऐसी लगती है जैसे विद्या-सिद्ध कोई विद्याधर-कन्या हो और नीचे गिरती हुई वह ऐसी लगती है, जैसे विद्या-भ्रष्ट कोई विद्याधर बाला आकाशसे गिर रही हो । तेजी से इधर-उधर दौड़ती हुई वह ऐसी लग रही है, मानो गरुड़की तेज गतिसे भयभीत कोई नाग-कन्या इधर-उधर दौड़ रही हो । तीव्र-गतिसे आगे बढ़ती वह ऐसी लगती है; मानो जनताके कोलाहलसे घबराकर कोई अश्व-किशोरी स्थान-भ्रष्ट हो; भागी जा रही हो । ···· ···· गांठोंसे टपकते जल कणोंसे वह ऐसी लगती है मानो कोई नवोढ़ा पतिके वियोगमें आंसू बहा रही हो । क्षणभरकी स्थिरतासे वह ऐसी लगती है, मानो कोई योग-परिव्राजिका दूसरोंको ठगनेके लिये कपटपूर्ण ध्यान कर रही हो ।[3]

अस्तु, जहाँ तक मैं सोचती हूँ आगम-साहित्यके प्रति यदि हमारा दृष्टिकोण सम्यक् हो जाता है तो कोई कारण नहीं, उसकी रसात्मकता और लयात्मकतामें भी हमें नीरसता या विसंगतियोंकी प्रतीति हो ।

जैसा कि पूर्वमें बताया जा चुका है, जैन-आगम विशुद्ध अध्यात्म-शास्त्र है । अध्यात्मकी यात्रा पर यात्रायित व्यक्ति इनका अनुशीलन कर चैतन्य जागरण—सम्यक्त्वसे लेकर मोक्षप्राप्ति तककी समग्र प्रक्रिया जान-समझ सकता है । फिर भी वर्तमानके सन्दर्भमें यदि हम पूर्व मान्यताओं और प्रतिबद्धताओं से ऊपर उठकर व्यापक दृष्टिसे आगमों का अध्ययन-अनुशीलन करें तो पाएंगे कि आधुनिक युगको सर्वाधिक चर्चित और मान्य सभी ज्ञान-शाखाओं का विकसित और प्रामाणिक आधार हमें यहां उपलब्ध होता है ।

शरीर विज्ञान (Physics)
गतिविज्ञान (Dynamics)
रसायन-शास्त्र (Chemistry)
गणित (Mathematics)
चिकित्सा-विज्ञान (Biology)
मनोविज्ञान (Psychology)
परामनोविज्ञान (Parapsychology)

इन समग्र विषयोंसे सम्बन्धित प्रचुर-सामग्री आगमोंमें बिखरी पड़ी हैं ।

---

१. ज्ञाताधर्मकथा—८।४०
२. ,, ,, १।५६
३. ,, ,, ९।१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य के शरीर-निर्माण और व्यक्तित्व निर्माणकी दृष्टिसे माता-पिता का क्या अनुदान रहता है, इस दृष्टिसे ठाण (३-४९४-४९५) द्रष्टव्य है। आगम-ग्रन्थोंमें निर्दिष्ट गर्भाधान कृत्रिम गर्भाधान और गर्भसंक्रमणकी प्रक्रियाको जानने वाला व्यक्ति वैज्ञानिक उपलब्धि "परखनली शिशु" पर आश्चर्यचकित नहीं होता।

यह निर्विवाद है कि न्यूटन द्वारा उद्घोषित पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्तकी प्रस्थापनासे पूरा वैज्ञानिक जगत् उपकृत हुआ है, लेकिन परम वैज्ञानिक भगवान् महावीरने विभिन्न पृथिवियोंके गुरुत्वाकर्षणके प्रभाव क्षेत्रका तथा अन्य पृथिवियोंके निवासियों पर होने वाले उसके प्रभावका प्रतिपादन आज से २५०० वर्ष पहले ही कर दिया था। (देखें-अङ्गसुत्ताणि भाग २ भगवती सू २।११९)

इसका अध्ययन अन्तरिक्ष अनुसंधान कार्यमें अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है।

जीव विज्ञान, गणित और ज्योतिष-शास्त्र की सामग्री तो आगमों में भरी पड़ी। साथ ही उस समय का भारतीय रसायन-शास्त्र और चिकित्सा-विज्ञान कितना समृद्ध और विकसित था इसकी भी भरपूर सामग्री उपलब्ध होती है।

मनोविज्ञान और परामनोविज्ञानके बीज तो यत्र-तत्र बिखरे पड़े ही हैं पर अनेकत्र उनका अङ्कुरित पल्लवित और पुष्पित रूप भी देखने में आता है

वहां तात्त्विक विषयोंके विश्लेषणके साथ-साथ साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक तथ्य भी गम्भीरताके साथ विश्लेषित हुए हैं। इस क्रमसे मनुष्य की शाश्वत मनोभूमिकाओं, मानवीय वृत्तियों तथा वस्तु सत्यों का मार्मिक उद्घाटन हुआ है।[1]

वृक्ष, फल, वस्त्र आदि व्यावहारिक वस्तुओंके माध्यमसे मनुष्यकी मनः स्थितियोंका जैसा सूक्ष्म विश्लेषण आगमोंमें हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।[2]

स्वर-विज्ञान और स्वप्न-विज्ञानकी प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। जैसे आज मनोविज्ञान व्यक्तिकी आकृति, लिपि और बोलीके आधार पर उसके व्यक्तित्वका अङ्कन और विश्लेषण करता है, वैसे ही आगमों में व्यक्तिके रङ्गके आधार पर उसके स्वरकी पहचान बताई है। जैसे—

श्यामा स्त्री मधुर गाती है। काली स्त्री परुष और रूखी गाती है। केशी स्त्री रूखा गीत गाती है। काणी स्त्री विलम्बित गीत गाती है। अन्धी स्त्री द्रुत गीत गाती है। पिंगला स्त्री विस्वर गीत गाती है।[3]

अनुयोगद्वारमें भी व्यक्तिकी ध्वनि और उसके घोषके आधार पर उसके व्यक्तित्वका बहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया गया है।

शब्द विज्ञानकी दृष्टिसे ठाणं (१० के २,३,४,५) सूत्र विशेष मननीय है। जिनमें दस प्रकारके शब्द, दस प्रकारके अतीतके इन्द्रिय-विषय, दस प्रकारके वर्तमानके इन्द्रिय-विषय तथा दस प्रकारके अनागत इन्द्रिय-विषयोंका वर्णन है। ये इस बातकी ओर सङ्केत करते हैं कि जो भी शब्द बोला जाता है, उसकी तरङ्गें आकाशीय रिकार्डमें अङ्कित हो जाती हैं। इसके आधार पर भविष्यमें उन तरङ्गोंके माध्यमसे उच्चारित शब्दोंका सङ्कलन किया जा सकता है।

जैन-आगमोंका कथा-साहित्य भी समृद्ध है। ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा और विपाकश्रुत—ये अङ्ग तो विशेषतः कथाओंके माध्यमसे ही अपने कथ्यको प्रस्तुत करते हैं। उत्तराध्ययन, राजप्रश्नीय, भगवती आदिमें भी तत्त्व प्रतिपादनके लिए कथाओंका आलम्बन लिया गया है।

---

१. ठाणं ३२२५, २६७

२. ठाणं ४।१२. ३४. १०१. १०७

३. ठाणं ७।४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमोंकी ये कथाएँ वस्तुतः मनोविज्ञान और परामनोविज्ञानके खोजियोंके लिए एक अमूल्य खजाना सिद्ध हो सकती हैं।

यद्यपि आगमिक कथाएँ एक-सी शैली, वर्ण्य-विषयकी समानता तथा कल्पना और कलात्मकताके अभावमें पाठकको प्रथम दृष्टिमें बाँध नहीं सकतीं। उनमें अतिप्राकृतिक तत्त्वोंकी भी भरमार-सी प्रतीत होती है। फिर भी जब-जब तथ्योंकी गहराईमें उतरकर रहस्यकी एक-एक परतको उतारनेका प्रयास होता है तो वे गहरे अर्थों और भावोंका प्रकटन करती हैं। अन्वेषणकी नयी राहें उद्घाटित होती हैं। यद्यपि इनको पढ़नेसे सामान्यतः कोई हृदयस्पर्शी मानवीय संवेदनाएँ उभरती हों, ऐसा नहीं लगता, पर इनमें जो पूर्वजन्म और पुनर्जन्म सम्बन्धी तथ्य उभरते हैं, वे निश्चित ही आजकी मनोविश्लेषणकी प्रक्रियाको पुनर्व्याख्यायित करते हैं। आगमोंकी जन्मान्तरीय कथाएँ मनोवैज्ञानिक अन्वेषणकी दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

आजके वैज्ञानिक युगमें, जबकि प्रत्येक चिन्तन या तत्त्व प्रयोग और परीक्षणकी कसौटी पर चढ़कर अपनी मूल्यवत्ता सिद्ध करता है, नयी प्रतिष्ठा अर्जित करता है, वैसी स्थिति भी अतिप्राकृतिक तत्त्वको मात्र पौराणिक या काल्पनिक मानकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। अति-प्राकृतिक Phenomenon को टालना आजके to-date ज्ञान-विज्ञानके परिप्रेक्ष्यमें अवैज्ञानिक ही प्रतीत होता है। क्योंकि आज भौतिक-विज्ञान और मनोविज्ञानके क्षेत्रमें अतिप्राकृतिक घटनाएँ और अतीन्द्रिय अनुभव भी प्रयोग और अनुसंधानके विषय बन चुके हैं। अन्तश्चेतनाके मूल उसकी खोजमें ये अप्राकृतिकसे प्रतीत होनेवाले तत्त्व भी अनिवार्य "डाटा"के रूपमें वैज्ञानिक स्वीकृति प्राप्त कर चुके हैं।

जैनकथा-साहित्य विशेषतः भवान्तर कथाओंमें मनोवैज्ञानिक अन्वेषणकी भारी सम्पदा और सम्भावनाएँ सन्निहित हैं। उनकी शैली और शिल्पनकी ओर ध्यान न देकर एक बार मात्र उनके कथ्यका गहराईसे अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जैन-आगमोंकी कथाएँ चैतन्य-जागरणकी जन्मान्तरगामिनी यात्रामें सार्थक कड़ियोंके रूपमें ग्राह्य हैं।

उल्लिखित समग्र दृष्टियोंसे जैन-आगम-साहित्यका अनुशीलन करनेसे विदित होता है कि भारतीय संस्कृतिकी संरचना और भारतीय प्राच्य-विद्याओंके विकसनमें आर्हत् वाङ्मयका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

आगम साहित्यने जिस तरह उत्तरवर्ती साहित्य और संस्कृतिको समृद्ध और संपुष्ट किया है, उसकी कहानी बहुआयामी और बहुसोपानी है। विषय वैविध्यकी धाराओं-प्रधाराओंमें स्रोतस्वित आगम वाङ्मयने भारतीय साहित्यको प्राणवन्त बनाया है और अपनी मौलिक विशेषताओंसे उत्तरवर्ती समग्र साहित्यकी धाराको सुपुष्ट किया है। भगवान् महावीरके उत्तरवर्ती मनीषी आचार्योंने प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंशके माध्यमसे भारतीय साहित्यकी जो अद्वितीय व्यक्तित्व-रचनाकी उसका आधारभूत तत्त्व आगम-साहित्य ही रहा है।

वस्तुतः भारतीय-संस्कृतिके सर्वाङ्गीण अध्ययनके लिए जैन-आगम साहित्यकी सामग्री उपयोगी ही नहीं, अनिवार्य भी है। जैन-आगमोंके अध्ययन तथा जैन-परम्परा का पूर्ण परिचय प्राप्त किए बिना हिन्दी साहित्यका प्रामाणिक इतिहास भी नहीं लिखा जा सकता।

अस्तु, शोध विद्वानोंसे यह अपेक्षा है कि जैन आगम-साहित्यके बारेमें अपने पूर्व दृष्टिकोणको बदलकर नयी दृष्टि निर्मित करें। वर्तमान को समग्र ज्ञान-विज्ञानकी विधाओंके साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर आगम-साहित्यका पुनर्मूल्यांकन करें।

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसीकी वाचनाप्रमुखतामें युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा सम्पादित और जैन विश्व-भारती लाडनूँ द्वारा प्रकाशित या प्रकाश्यमान आगम-साहित्य निश्चित ही इस दिशामें हमारा पथदर्शन कर सकता है। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org